श्रीराधासुधानिधि में सखीभाव

रानी मिश्रा*

रसोपासना परम्परा का समस्त प्रारुप 'सखीभाव' पर टिका हुआ है। गोस्वामी हितहरिवंश महाप्रभु 'सखीभाव' को मान्यता प्रदान करते हैं। रसोपासना के अन्तर्गत जिस माधुर्य जगत की सृष्टि होती है, उसके चार स्तम्भ है –1. परम दम्पत्ति श्यामा श्याम 2. नित्य विहार 3. नित्यवृन्दावन 4. सखी। कृष्ण भक्ति परम्परा में इन चारों को हम उपस्थित पाते हैं, किन्तु उनका विशिष्टतम और परम विलक्षण स्वरुप रसोपासना के अन्तर्गत ही देखने को मिलता है। श्रीराधारानी की सहचरियाँ प्राण श्रेष्ठ प्रियतम, रतिलम्पट श्री श्यामसुन्दर के प्राप्त होने पर भी श्रीराधा पद रस का ही रसास्वादन करती हैं। जब श्री स्वामिनी श्रीकृष्ण की ओर से मुख फेर लेतीं हैं, तब उनकी प्रियसखी परिहास के द्वारा इस प्रकार मनातीं हैं–

यदि स्नेहाद्राधे दिशसि रति लाम्पट्यपदवीं, गत मे स्वप्रेष्ठं तदपि मम निष्ठां श्रणु यथा ।
कटाक्षैरालोके स्मितसहचरैर्जापुलकं, समाशिलष्याम्युच्चैरथच च रसये त्वत्पदरसम् ।। [1]

हे श्रीराधे! स्नेहवश यदि आप कभी रतिलम्पटादि की स्थिति पर पहुँचे हुए अपने प्रियतम का दान मुझे कर दें, तो भी मेरी इस प्रकार की निष्ठा को सुनिये–''(मैं) मन्द मुस्कान से युक्त कटाक्षों से उनको देखूँगी और उनके पुलकित होने पर गाढ़ आलिंगन भी करुँगी, किन्तु इतना सब करने पर भी आस्वादन तो आपके चरणारविन्द के दास्यरस का ही करुँगी।'' अपनी सखियों को स्वयं के प्रति समासक्त और श्रीकृष्ण के प्रति विमुख जानकर मानिनी श्रीजी के मुख पर हास्य की स्निग्धि रेखाऐं खिच जाती हैं। वे (श्रीराधा) अपनी प्यारी साखियों को प्रसन्न करती हुईं कहने लगतीं हैं कि– हे सखि! तुम्हे सदा से ही कृष्णपक्ष, कृष्णकमल, कृष्णसार, मृग, कृष्णतमाल, कृष्णमेघ, यही सब प्यारे लगते हैं। कृष्ण यमुना भी तुम्हे प्यारी लगती है। ऐसा क्यों? इसलिए न कि इनके नाम, रुप कृष्ण से मिलते हैं, फिर आज तुम साक्षात् कृष्ण से ही विमुख क्यों हो रही हो ? उनकी श्यामता तो मोहन माधुरी की पराकाष्ठा है। रसोपासना के उन्नायकों में गोस्वामी हितहरिवंश महाप्रभु का अन्यतम स्थान है। उनकी परम्परा ''राधावल्लभ सम्प्रदाय'' के रुप में विकसित हुई है, तथा ऐतिहासिक स्थान की अधिकाारिणी वनी। गोस्वामी हितहरिवंश महाप्रभु जी परमोच्च रसोपासक होते हुए भी 'सखीभाव' को ही मान्यता प्रदान करते हैं। हितहरिवंश महाप्रभु प्रणीत 'श्रीराधासुधानिधि' में उन्होने कई स्थानों पर 'सखीभाव' को मूल रुप से दर्शाया है। जिसका एक विशेष उदाहरण यह है–

नीलेन्दीवरवृन्दकान्ति लहरी–चौरं किशोर द्वयं,
त्वये तत्कुचयोश्चकास्ति किमिदं रुपेण सम्मोहनम्।
तन्मामत्मसखीं कुरु द्वितरुणीयं नौ दृढं श्लिष्यति,
स्वच्छायामभिवीक्ष्य मुह्यति हरौ राधा स्मितं पातु नः ।। [2]

अपनी श्री प्राण–प्रेयसी के युगल कुचकुड्मल पर अपना प्रतिबिम्ब निहार कर महामोहन मोहित हो जाते हैं। अपनी प्राण–प्रेयसी से सम्भ्रम बोलते हैं–'प्रिये! सुन्दर नील इन्दीवर की कान्ति लहरी चुराकर अपने में रखने बाले तुम्हारे वक्षःस्थल पर ये दो किशोर चोर कौन हैं? क्यों ये इस रुप में मेरे मन सम्मोहन हैं? अच्छा, अब तुम मुझे अपनी सखी बना लो, जिससें कि ये दोनों मेरा आलिंगन करें । प्रियतम मदन मोहन के इस सम्मोहन का अवलोकन और श्रवण कर श्रीराधारानी मुस्कराने लगती हैं। उनकी यह मुस्कान हमारी रक्षा करें ।

सखी – श्रीराधा जी की सखियों ने कृष्णकान्ता पदप्राप्ति के लिए नाना प्रकार के व्रत, तप और देव पूजायें की थीं। उनके कष्ट भी उठाये थे, और लोक तथा वेद मार्ग का उल्लंघन करके अपने माता–पिता, पुत्र और पति को भी त्याग दिया था, किन्तु इस त्याग से श्रीकृष्ण को क्या लाभ हुआ, क्या सुख मिला? किसी पति विशेष, या भगवान के लिए ही घर–बार छोड़ देना ओदार्य तो नहीं कहा जा सकता। त्याग, वैराग्य आदि चाहे जो कुछ भी कहा जाये, किन्तु निर्हेतुक औदार्य का ही दूसरा नाम तत्सुख सुखित्व है, जो कि प्रेम का एक स्वरुपभूत गुण है। 'प्रेम'+प्रेमी, प्रेमास्पद और प्रीति इन तीन अंगो को लेकर पूर्ण होता है।

इस प्रकार से प्रेमी (श्यामसुन्दर) और प्रेमपात्र (श्रीराधा) की भाँति इन प्रीतिस्वरुपा श्रीराधादासी सखियों में भी वह तत्सुख सुखित्व (औदार्य) पूर्ण रुप से प्रत्यक्ष रहता है। श्रीयुगल के सुख में सुखी रहने वाली इन उदार सखियों के लिए ही श्रीराधा–पद दास्य काम्य है। यही कारण है कि पिच्छ मौलि श्रीश्यामसुन्दर भी इनके सामने सदा चाटु, काकु, वाणीवद विनयावत बने रहते हैं। इस प्रकार से बहुत अधिक स्पष्ट है कि '**उदारगोप्यः**' शब्दमहारास में श्रीकृष्ण से मिलने वाली गोपियों का सम्बोधक न होकर नित्य परिकर की श्रीराधा मनुधावती व्रजकिशोरियों का ही सम्बोधक हैं। 'मुण्डकोपनिषद' के तृतीय मुण्डक कें प्रथमखण्ड में सबसे पहले मन्त्र में एक साथ रहने वाले परस्पर सखाभावापन्न ऐसे दो पक्षियों (जीवात्मा और परमात्मा) का उल्लेख प्राप्त होता है। जो एक ही वृक्ष का आश्रय लेकर रहते हैं। उन दोनों में से एक तो उस वृक्ष के कर्मरुप फलों का गृहण करता है। तथा दूसरा न लेता हुआ केवल उसें देखता रहता है। विशुद्ध रुप में जीवात्मा परमात्मा का सखा ही है। उपनिषदों में व्यंजित इस भाव पूर्ण परिपाक व्रज का रसोपासक

शोधकत्रीः– (जीवाजी वि0वि0 ग्वालियर)

'सखीसम्प्रदाय' में प्राप्त होता है। सखीभाव का उपासक अपने को परमात्मा के संग आत्मिक मैत्री के तन्तु से जोड़कर सांसारिक विषयों से विरक्त होकर जन्म–कर्म–देहाभिमान, कुलाभिमान तथा लिंगादि के गौण भाव को तिलांजलि दे परमात्मा के साथ नित्य आत्मक्रीड़ हो जाता है। इस प्रकार से रसिकवर लाल जी के सभी गुण प्रशंसनीय है, किन्तु उनमें भी कुछ गुण विशेष ऐसे हैं, जो अद्वितीय हैं। इसीलिए वे सखी परिकर के लिए श्रीप्रिया जी के लिए और स्वयं प्रियतम के लिए भी परम प्रिय हैं। इन गुणों। के कारण ही वे प्रिय प्रियतम और प्रियतर वने हुए हैं। उनके इन गुणों का व्याख्यान श्री प्रिया जी स्वयं श्रीमुख से करती हुईं कहतीं हैं। कि जो–जो अच्छा लगता है, मेरे प्रियतम वही–वही किया करते हैं और वे अपने कोटि तन, कोटि मन तथा कोटि प्राणों द्वारा मुझसे हारे हुए वने रहते हैं। 'श्रीराधासुधानिधि' में भी–

यस्यास्तेबत किंकरीशु वहुशः चाटूनि वृन्दाटवी।
कंदर्पः कुरुते तवैव किमपि प्रेप्सुःप्रसादोत्सवम् ।। [3]

सखियों का प्रेम राधा व कृष्ण दोनों पर समानभाव से विनयस्त है। वस्तुतः सखियों के प्रेम को युगलप्रेम की पराकाष्ठा कहने से भी अत्युक्ति नही होती तथापि यह सत्य है कि लीलाभेद से यह प्रेम कभी राधा के प्रति, कभी कृष्ण के प्रति किंचित आधिवक्य को प्राप्त होता है, जिस प्रकार राधा की खण्डिता अवस्था में सखियों का प्रेम कृष्ण की अपेक्षा राधा की ओर अधिक मात्रा में प्रकाशित होता है।

गोपीभाव एवं सखीभाव– श्रीकृष्ण के प्रति समर्पित निष्ठा के कारण गोपी एवं सखी को अभिन्न मान लेना अस्वाभाविक नहीं है, किन्तु 'सखी एवं गोपी में तात्विक स्तर पर अन्तर विद्यमान है। यशोदा आदि गोकुल वृद्धाऐं 'गोपी' तो मानी जा सकती हैं, किन्तु 'सखी' नहीं। गोपीभाव का उद्‌गम एंव विस्तार पौराणिक परम्पराओं के साथ निबद्ध है जिसे 'सखीभाव' के उपासकों ने गृहण नहीं किया है। कृष्ण भक्ति परम्परा के अन्तर्गत 'गोपी' एवं 'सखी' शब्दों को समानार्थी माना जाता है। कृष्ण भक्ति में गोपिकाओं का आसन अत्यन्त ऊँचा है। वे कृष्ण भक्ति की आचार्या भी हैं, और लीलाधारिणी शक्ति भी।

सामान्य पारम्परिक भक्त की दृष्टि में 'गोपी' और 'सखी' समानार्थक हैं, और 'गोपीभाव' तथा 'सखीभाव' में कोई अन्तर नहीं है। गोपीभाव पौराणिक कथा प्रारुप की जटिलता का निर्वाह कर लेता है, जो सखी भाव द्वारा सम्भव नहीं हैं, क्योंकि सखीभाव निकुंज में निरवधि केलिरस की उपासना करता है, जिसमें पौराणिकता एवं उसके प्रारुप के लिए लेशमात्र भी अवकाश नहीं है, गोपीतत्व की दार्शनिक आधार पर आध्यात्मिक व्याख्या सम्भव है। श्री कृष्ण परब्रह्म हैं, और गोपी ब्रह्म की प्रकृति । यहाँ इस विषय में गवेषक विद्वान् की टिप्पणी को उद्धृत करना समीचीन होगा–गोपीभाव एवं सखीभाव को एक मान लेने वाले मूल बिन्दु पर ही एक मत स्पष्ट नहीं है। उनमें से कुछ के अनुसार–गोपियों का श्रीकृष्ण के

साथ कायिक विलास होता है, जबकि अन्य विद्वानों के द्वारा गोपियों के साथ श्रीकृष्ण का बिहार स्वीकृत एवं मान्य नहीं है। सखीतत्व के उपासक दार्शनिक एवं आध्यात्मिक व्याख्या में कोई रुचि प्रदार्शत नहीं करते हैं। सखीभाव की उपासना भूमि एकमेव में नित्य वृन्दावन है, जबकि गोपीभाव की उपासना भूमि सम्पूर्ण ब्रज है। कृष्णभक्ति में रसोपासना के उन्नायकों में स्वामी हरिदास जी के साथ–साथ हितहरिवंश महाप्रभु का अन्यतम स्थान है। उन्होंने अपनी रचना ''श्रीराधासुधानिधि'' में सखीभाव के साथ–साथ 'गोपीभाव' को भी स्थान दिया है। जबकि स्वामी हरिदास जी एकमेव विशुद्ध ''सखीभाव'' को ही मान्यता प्रदान करते हैं। रसोपासना के अन्तर्गत ''सखीभाव'' के मूलाधार के समान हैं। 'सखीभाव' का बीजांकुर 'सखाभाव' के रूप में उपनिषदों के अन्तर्गत देखने को मिलता है। वेदों में आत्मा एवं परमात्मा के मध्य सखाभाव के उदाहरण प्राप्त होते हैं। वैदिक परम्परा का सखाभाव कृष्ण भक्ति में आकर सखीभाव में परिवर्तित किंवा विकसित हो गया।

इस प्रकार प्रक्षेप करते हुए इस विषय के अधिकारी विद्वान् डॉ0 शरण विहारी गोस्वामी की मान्यता है कि–''पहले नारीभाव फिर पत्नीभाव यह विकास का मनोवैज्ञानिक क्रम है परन्तु पत्नीभाव में जो स्वसुख की कामना सहज ही आ जाती है, वह साधना के सात्विक विकास में बाधक हो सकती है, दूसरे पुरुष रूप परमेश्वर के साथ तो पत्नीभाव की संगति बैठ जाती है, परन्तु जहाँ उपास्य युगल स्वरुप हो वहाँ पत्नी भाव ग्रहण करने की ओर प्रायः प्रवृत्ति नहीं होती। यह सम्बन्ध की सकात्मा हटाता है, और श्रीराधा के समकक्ष होने का कभी विचार भी नहीं करता। ऐसी स्थिति में स्त्रीभाव, सखीभाव के रूप में ही रहता है, और सम्पूर्ण सेवा और लीला स्वाद इसी में सम्पन्न होता है।

अष्टसखी– कमल के अष्टदलों पर ललितादि अष्ट सखियाँ अपने–अपने स्वभाव में अवस्थिति हैं। जो इस प्रकार हैं' पूर्व में विशाखा, पश्चिम में ललिता, उत्तर में श्रीमती एवं दक्षिण में पद्मा, अग्निकोण में शैव्या, नैर्ऋत्य कोण में भद्रा, वायुकोण में श्यामला एवं ईशानकोण में हरिप्रिया। इन अष्ट शक्तियों के पार्श्व देश में और भी आठ शक्तियाँ प्रकट हैं–यथा–चन्द्रावली (चन्द्ररेखा) व्रन्दा, वदन–सुन्दरी, श्रीप्रिया, मधुमति, शशिलेखा, कुंजरी एवं सुमुखा। ये षोड्शशक्तियाँ ही प्रधान हैं। हृदय से जुड़ी हुईं अनन्त धमनियों की भाँति श्रीराधा की समस्त सखियाँ राधा हृत्सरोवर से निरन्तर प्रेमरस लेती है। और उस रस को लेकर सर्वत्र फैलाती रहती है। तथा साथ ही अपना प्रेमरस भी राधाजी के हृदय में उड़ेलतीं रहतीं हैं। इस रस विस्तार के कार्य में श्री ललितादि अष्टसखियों का सबसे प्रमुख स्थान है। श्रीराधा किशोरी जी की सखियाँ पाँच प्रकार की मानी गयी है, जो इस प्रकार है– सखी, नित्यसखी, प्राणसखी, प्रियसखी और परमेष्ठसखी। सखी–कुसुमिका, विन्ध्या, धनिष्ठा आदि सखी कहलाती हैं। नित्यसखी–कस्तूरी, मणिमंजरिका, आदि नित्यसखी कहीं

जातीं हैं। प्राणसखी–शशिमुखी, वासन्ती, लसिका, आदि प्राणसखी की गणना में हैं। प्रियसखी–कुरगांक्षी, मंजकेशी, माधवी, मालती आदि प्रियसखी कही जातीं हैं। परमेष्ठीसखी– श्रीललिता, विशाखा, चित्रा, इन्दुलेखा, चम्पकलता, रंगदेवी, तुंगविद्या, सुदेवी ये अष्ट सखियाँ परम श्रेष्ठ अर्थात् परमेष्ठी सखियों की गणना में हैं। ये आठों सखियाँ ही अष्टसखी के नाम से विख्यात है। एक दिन ललितादि सखीगण ने श्रीराधा जी का कुन्ज में श्री श्यामसुन्दर जी से मिलन कराया । श्री प्रिया जी मदनरसास्वादन कर आनन्द विवश हो उठीं। श्री ललिता ने परस्पर कथोपकथन में 'कृष्ण' नाम का उच्चरण किया। श्रीजी ने पूछा ललिते! यह दो अक्षर मात्र का नाम 'कृष्ण' जिसका है वह कौन है? इस नाम ने मेरे कानों मे प्रवेश कर मेरे धैर्य को भगा दिया है। ललिता हे रागान्धे! तुम नहीं जानतीं हो? उसे, जिसके वक्षस्थल पर तुम निरन्तर क्रीड़ा करती हो? ललिता राधे असम्भव नहीं न परिहास। हे मोहिते! अभी मैंने तुम्हें उसके हाथों अपर्ण किया था। श्रीराधा–ललिते! ठीक कहती हो तुम किन्तु लगता है जन्म से लेकर आज पर्यन्त मैंने उन्हें नयन भर कर नहीं देखा। आज भी वे यदि मेरे नयन गोचर हुए हो तो बिजली की चमक की भाँति । श्रीकृष्ण की नित्य किशोर लीला में श्रीललिता की आयु चौदह वर्ष, तीन मास बारह दिन की रहती है। श्रीललिता में वह नित्य दृव्य आवेश रहता है कि इस समय मेरी आयु इतनी हुई है। इसी प्रकार उस लीला में श्री विशाखा चौदह वर्ष, दो मास, पन्द्रह दिन की थीं। तथा श्री चित्रा चौदह वर्ष, एक मास उन्नीस दिन, श्रीइन्दुलेखा चौदह वर्ष, दो मास, बारह दिन, श्रीचम्पकला चौदह वर्ष, दो मास, चौदह दिन श्रीरंगदेवी चौदह वर्ष, दो मास, आठ दिन, श्रीतुंगविद्या चौदह वर्ष, दो मास, बीस दिन और सुदेवी चौदह वर्ष, दो मास, आठ दिन की रहतीं हैं। अवश्य ही जब श्रीराधाकिशोरी की लीला का प्रपंच में प्रकाश होता है, और वे अवतरित होतीं हैं, तव ये भी उसी प्रकार अवतरित होतीं हैं।

श्रीराधादासी महिमा–श्रीराधा दासियाँ परम उदार स्वभाव की है। उन्होंने श्रीराधा जी की पदरेणु को मस्तक पर धारण किया है। इसके फलस्वरूप उन्होंने रसिकनागर श्रीकृष्ण के सन्तोषकारी मनोहर गुणों को प्राप्त किया है। इन्हीं गुणों के द्वारा उन्होंने श्रीश्यामसुन्दर की मनवांछित सेवा को भी प्राप्त किया हैं इस प्रकार वे परम धन्य हो गयीं हैं। तात्पर्य यह है कि उदार स्वभाव ब्रजगोंपियों ने श्रीराधाजी की सेवा की उनके अनुकूल ही गुणों सहित योग्यता प्राप्त की है। वह एकमात्र स्वामिनी श्रीराधा जी के चरणकमल रेणु को मस्तक पर धारण करने के कारण ही है।

यत् किंकरीषु बहुषः खलु काकुवाणी, नित्यं परस्य पुरूषस्य शिखण्डमौलेः।
तस्या कदा रसनिधेर्ब्रषभानुजायास्तत्केलिकुंज भावनांगणमार्जनीस्याम् ।।[4]

उपरोक्त श्लोक में हिताचार्य जी साधकदेह से श्री राधादासियों की चरणरेणु के स्पर्श का शौभाग्य प्राप्त करने के लिए मार्जनी होने की प्रार्थना करते हैं। गत प्रसंग में स्फूर्ति का विराम तो हो गया था, परन्तु निकुंज भवन में रसिक शेखर के द्वारा श्री निकुंजदेवी की आराधना तथा श्रीराधावदन चन्द्र की अमित लावण्यमयी

मधुरिमा की छटा हृदयस्तल पर गहरा प्रभाव अंकित कर चुकी थी। उनका चित्त फिर श्री स्वामिनी की कृपा से उसी लीला राज्य में सिद्ध देहावेश लेकर जा पहुँचा। श्रीप्राण कान्त के साथ श्रीराधा जी विविध श्रृंगार रसमय में थीं। किंकरी कुजरन्ध्रों में नेत्र गाड़े आनन्द विभोर हो रहीं थीं। इसमें श्रीराधा चरणानुगत्य अथवा श्री राधादास्य ही ध्वनित हो रहा है। श्रीराधादास्य अंगीकार करना ही अपने में एक असाधरण उदारता का परिचायक है। इस उदारता को श्री लक्ष्मी जी भी गृहण न कर सकीं। अपने वैभवाभिमान के कारण लक्ष्मी जी ने व्रजगोपियों का आनुगत्य स्वीकार न किया। अतः वह व्रजवासपूर्वक श्रीकृष्णांगसंग प्राप्त न कर सकीं। श्रीराधा दासी मंजरीरूप में श्रीराधा–कृष्ण चरण युगल का सेवा सौभाग्य एकमात्र परम् करूणामय श्रीकृष्ण चैतन्यमहाप्रभु की अभूतपूर्व देन ही है।

श्रीगोपी जनवल्लभ जो वृन्दावनीय मधुरभाव के विषय हैं, उनके चरण कमलों के दासों के दासों का दास है 'जीव' अर्थात् श्रीराधादि व्रजगोपीगण श्रीकृष्ण की मधुरभाव प्रधान रागात्मिका दासियाँ हैं। उनकी दासियाँ नित्य रागानुराग भक्ति की परिकरस्वरूपा श्रीरूप, श्रीरति आदि मंजरीवृन्द हैं। उन मंजरियों के आनुगत्य में रहकर जीव को श्रीप्रिया प्रियतम की सेवा करने का अधिकार है। इस प्रकार श्री गोपीजनवल्लभ श्रीश्याम सुन्दर की आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा जी के चरण कमलों के दासी की दासी होना ही जीव का स्वरूपानुवन्धि धर्म है।

श्रीराधा जी की दासियों के उदार स्वभाव का परिचय इससे अधिक क्या दिया जा सकता है कि वे निष्काम, निःस्वार्थ, परमविशुद्ध कृष्ण सुखैकतापर्यमय प्रेम के पीछे अपने सर्वस्व को तिलांजलि दे देतीं हैं। उनका श्रीराधा प्रेम में स्वसुख की गन्ध का लेशमात्र भी नहीं है। रूढ़भाव स्तरीय महाभाव को प्राप्त कर वे वेद–देह धर्मों को तथा आर्यपथ का उत्सर्ग कर देती है। उन जैसी उदारता और कहाँ है? सखी रूप की धारणा में श्रीराधा सेवा की कामना निहित है।

सन्दर्भ

1. श्रीराधासुधानिधि –87 पृष्ठ –44
2. वही –245 पृष्ठ –127
3. वही –93 पृष्ठ –48
4. वही –4 पृष्ठ –2

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची –

1. श्रीराधासुधानिधि–गोस्वामी श्रीहितहरिवंश महाप्रभु प्रणीत, भावार्थ–भक्ति विजय, पद्यानुवाद–श्री बिहारीदास 'वृन्दावनी' प्रकाशक–व्रजनिधि प्रकाशन–वृन्दावन वि0 सं0 2056 सन्–1996